भूमिका ।

विदित हो कि आजकल जो नूतन सत्यार्थ प्रकाश मार्तण्डाकार छपा है मुझे किसी महाशय ने अव- लोकनार्थ लाकर दिया मैंने इस इच्छासे कि देखें इस में भी कुछ अदलबदल जैसे औरों में करते रहते हैं किया है कि नहीं शुरू से देखना आरम्भ किया कुछ दूर चलकर भूमिकामें ही अट्ट सट्ट बातें दीखने लगीं, जिन को देखकर मैंने सोचा कि जब (प्रथमग्रासे मक्षिका पातः) है तो आगे इसमें क्या ठिकाना है "यथेमां वाचम्" इत्यादि यह मन्त्र आधाही लिखकर शूद्रकेलिये भी वेद पढ़ने का अधिकार दे डाला ! परयाद रहे यदि सम्पूर्ण मन्त्र लिखा जाता तो पोल खुलजाती और भंगी चमार आदिकों को यज्ञोपवीत और वेद पढ़नेका अधि कार नहीं पाता जब कि श्लोक या मन्त्रके सब सम्बंधी पद मिलकर ही वाक्यार्थबोधको उत्पन्न कर सकते हैं तो अपनेही कथन के अनुसार यह क्या अनर्थ ?

इन बातों को जानने के लिये मैंने यह अति सं- क्षिप्त संग्रह किया है—आशा करता हूं कि इस में जो कुछ भूले हों उनको देखकर भी सज्जन अप्रसन्न न होंगे और आर्यसमाजी भी इस को पक्षपात छोड़कर सम दृष्टि से देखेंगे ॥

सज्जनोंका दास–श्रीहरिद्वारलाल शर्म्मा

श्रीहरिःशरणम् ॥

ध्यायंध्यायंगुरोःपादौस्मारंस्मारंगणाधिपम्।

वैदिकाभासबोधाख्योनिबन्धःक्रियतेमया॥

आज कल कितने ही मनुष्य ऐसे हैं जो हर एक मनुष्य के कथन या लेखपर विश्वास करके अपने सत्यधर्मसे विमुख हो कर मनुष्यपन को व्यर्थ खो रहे हैं, उन्हीं सज्जनोंको मैं ध्यान दिलाता हूं कि वे विना सोचे विचारे अपने धर्म को छोड़कर, ऋषि महर्षियों को कलंक लगाकर अपनेको कलङ्कित न करें। आज कल आर्यसमाज नामक जो वैदिकाभासों का एक दल खड़ा हुआ है वह अपने को सच्चा वैदिक और इस मत के प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी को सत्यवक्ता और पूर्ण विद्वान् बतलाता है अब मैं उक्त दलके वैदिकत्व और स्वामीजीके विद्वत्ताके उदाहरण (नमूने) पेश करता हूं जिनको देखकर पाठक भली भांति जान सकते हैं कि उक्त दलके आचार्य कैसे सत्यवक्ता और विद्वान् थे बस "मूलन्नास्ति कुतः शाखाः" के अनुसार आप लोग जान लेवें कि उक्त आचार्यके ग्रन्थोंको देखकर बहकने वाले शिष्य लोग क्या योग्यता रखते होंगे?

प्रथम उपदेश

सत्यार्थप्रकाश-भूमिका=पृ० ६-जो कोई इसे ग्रंथ कर्त्ता के तात्पर्यसे विरुद्ध मनसा से देखेगा उनको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा-क्योंकि वाक्यार्थ बोध में चार कारण होते हैं-"आकांक्षा" "योग्यता" आसत्ति" और तात्पर्य" जब इन चारों बातोंपर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रंथको देखता है तब उसको ग्रंथका अभिप्राय विदित होता है ॥

(विचार) इस लेखसे यही मालूम होता है कि स्वामी दयानन्द जी ने जितने ग्रन्थ देखे हैं उन में से किसी का भी अभिप्राय आपको विदित नहीं हुआ तब ही तो श्रीमद्भागवत आदि पूज्य ग्रन्थोंका अभिप्राय न जानकर उन ग्रंथों पर झूठे आक्षेप किये हैं जैसे आप लिखते हैं " आसत्ति ,, जिस पदके साथ जिसका सम्बन्ध हो उसीके समीप उस पदको बोलना वा लिखना । "तात्पर्य,, जिसके लिये वक्ताने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना । इन दोनों ही नियमों के विरुद्ध आपने मन्त्रस्थ और श्लोकस्थ पदों में सर्वत्र वक्ताके तात्पर्य को न समझ कर मनगढ़न्त पदों

का सम्बन्ध किया है या जानकर अपना प्रयोजन सिद्ध करने को अर्थ की जगह अनर्थ कर डाला है। उदाहरण के लिये एक श्लोक या मन्त्रोंमें जो लीला की है सो दिखलाई जाती है ॥ रथेनवायुवेगेन ज-गाम गोकुलम्प्रति "इस अधूरे ही श्लोक में क्या २ अ-नर्थ किया है आप लोग उसे देखकर जान लेवें कि जिन २ ग्रंथोंके पते से श्लोक लिखकर खण्डन मण्डन और ग्रंथों पर आक्षेप किये हैं सब मिथ्या ही हैं। इस श्लोक के पूर्वार्द्धको छोड़कर "रथेन वायुवेगेन,, यह बीच से एक पद लिखा फिर अपना प्रयोजन गांठने को कहीं से ला कर " जगामगोकुलंप्रति ,, यह और भी उसमें जोड़ दिया यह वही दृष्टान्त हुआ कि 'कहीं की ईंट कहींका रोड़ा भानमतीने कुनवा जोड़ा,, फिर मनगढ़न्त भाषा भी नीचे लिखमारी, क्या ऐसा श्लोक का पाद कहीं पर भागवत में दिखाने वा श्री दयान-न्द जीके किये हुए अर्थको सत्य करने का दावा कोई दयानन्दी भाई कर सकता है ?। यदि कोई नहीं कर सकता तो इसी पाण्डित्य के घमण्ड में आप वैदिक झण्डा लिये फिरते हैं। "आसत्ति, और तात्पर्य,,इन के अनुसार उक्त श्लोक पादके वाक्यार्थ में स्वामीजी

ने कौनसा काम किया है। जिसके लिये वक्ताने शब्दो-च्चारण वा लेख किया हो उसीके साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना ऐसे तात्पर्य के माइने आपही बाबाजीने लिखे हैं। फिर इसके विरुद्ध कार्रवाई आप ही क्यों की? भागवतमें यथार्थ श्लोक इसप्रकार है॥

भगवानपिसम्प्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप !
रथेनवायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम्
स्क० १० अ० ३९ श्लोक ३८।

अर्थ—हे नृप? भगवान् भी बलदेव और अक्रूरजी के सहित वायुके समान वेग वाले रथ से पापनाश क-रने वाली कालिन्दी नामक नदी को प्राप्त हुए। अब इससे आप विचार सकते हैं कि सूर्योदय से चले इ-त्यादि स्वामीजीका कपोल कल्पित अर्थ कहांसे आया आज कल के नूतन वैदिकाभास जो स्वामी जी के छिद्रोंको छुपाना चाहते हैं, इसमें कुछ और ही लीला करके 'रथेन वायुवेगेन,, का पता अलग और "जगाम गोकुलम्प्रति., के जुदे २ अंक लगाने लगे हैं अब इस प्रकार लिखने लगे हैं॥

रथेनवायुवेगेन भा० स्क० १० अ० ३९ श्लो० ३८ जगामगोकुलम्प्रति ॥ भा० स्कं० १० अ० ३८ श्लो० २४ ॥

लेकिन समझ रक्खो यह सब धोखे बाजी है ऐसे पद और उन के अर्थ की सङ्गति भागवत में किसी जगह पर नहीं मिल सकती। दूसरा श्लोक भागवत में इस प्रकार है॥

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि। रथेनगोकुलं प्राप्तः सूर्य्यश्चास्तगिरिम्प्रति भा० स्कं १०।

अर्थ—श्वफल्क के पुत्र अक्रूरजी श्रीकृष्ण जी का मार्ग में इस प्रकार चिन्तवन करते हुए रथसे गोकुल को पहुंचे और सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हुआ।

इससे भी "जगामगोकुलम्प्रति" यह पद कहीं भी नहीं आया और इस से उन का वह अर्थ भी नहीं निकल सकता—बस ऐसे २ कितने ही उदाहरण स्वामी जी की अज्ञता के द्योतक और मिथ्याभाषित्व के जनाने वाले हैं उन्हीं के ग्रन्थों में हम दिखला सकते हैं। पर बुद्धिमान् थोड़े हीसे समझ सकते हैं कि—इस से क्या सार है। इसी प्रकार "सांचेदग्नतयोनिः" इत्यादि स-

नुजी के श्लोक में भी यही लीला रची है-स्वामीजी ने अपना प्रयोजन बनाने के लिये 'साचेत्' की जगह 'या स्त्री' ऐसा पाठ बनाया था, आज कल के सुधारक लोगों के सुझाने पर फिर 'साचेत्' लिखने लगे हैं यह क्या कम अन्याय है ? जब कि प्राचीन पाठों में अदल बदल करते रहते हैं तभी तो एक स्त्री के ग्यारह २ खसम और जीता हुआ भी अपनी स्त्री दूसरे को सौंप दे ऐसे अर्थ वैदिकमन्त्रों के लिखे हैं; क्या ऐसा आजतक किसी वैदिक जी महाशय नें करके दिखलाया है ? यदि नहीं तो यह विधि किसी दूसरे के शिर पटकने को लिखी होगी। द्विजों में ऐसा होना असम्भव है-आप इस वैदिक विधि को अपने २ घरों में वर्त्तिये, इसी प्रकार आधा श्लोक मनुजी के पते से लिख कर संन्यासियों को धन माल दे, ऐसा लिखा है दयानन्दी वार २ कहा करते हैं कि स्वामी जी त्यागी और परोपकारी थे क्या ऐसे ही लोग त्यागी होते हैं जो (विप्रेषु) की जगह "विविक्तेषु" लिखकर संन्यासियों का धन दे ऐसा अर्थ कर डाला! क्या यही त्यागियोंके लक्षण हैं ? उक्त श्लोक मनुस्मृति अ० ११ में इस प्रकार है-

धनानितुयथाशक्ति विप्रेषुप्रतिपादयेत् ।
वेदवित्सुविविक्तेषु प्रेत्यानन्त्यंसमश्नुते॥

अर्थ—यथाशक्ति धन वेद के जानने वाले विविक्त नाम कुटुम्बी ब्राह्मणको दे परलोकमें अनन्तफलको प्राप्त होता है। पाठक जानलेंगे कि इसमें संन्यासियोंको धनदे यह अर्थ कौनसी वैदिकशक्तिसे होसकता है॥

यदि उक्त दोनों पदों के अर्थ की सङ्गति या दोनों पद भागवत में और उक्त आधा श्लोक (विविधानि च रत्नानि०) इत्यादि मनु में हमें कोई दयानन्दी दिखा देगा तो हम उन के आचार्यदयानन्द जी को सत्य वक्ता और विद्वान् समझेंगे, नहीं तो धोखेवाज और झूंठा समझा जावेगा-(रथेन वायुवेगेन) इत्यादि सत्यार्थ० पृ० ३६० में देखना।

द्वितीय उपदेश।

यही लीला वैदिक मन्त्रों में भी की है—जैसे—

अन्यमिच्छस्व सुभगे ! पतिंमत ।

यह मन्त्र का चतुर्थांश लिख कर नीचे लिख मारा कि-"जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि-हे सुभगे। सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की इच्छा कर क्योंकि अब मुझसे सन्तानोत्पत्ति

न हो सकेगी तब स्त्री दूसरेसे नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे" इति—

विचार-क्या यह ऋग्वेदका मन्त्र इतना ही है ? यदि और भी है तो आपके लिखे वाक्यार्थबोध के दो कारण "तात्पर्य" और "आसत्ति" आप के वाक्यार्थ को ठीक कर सकते हैं ? यदि नहीं तो उस के मतानुयायी स्वामी जी के छिद्रों को छुपाने का दावा छोड़ दें नहीं तो उन को भी नीचा ही देखना पड़ेगा झूठेकी साक्षी भरने वाला भी झूठा ही समझा जाता है। यही गपड़ चौथ "यथेमांवाचम्" इत्यादि यजुर्वेदके मन्त्र में भी की है अब पूर्वोक्तमन्त्र ऋग्वेदमें देखिये कैसा है ?॥

आघाताग्च्छानुत्तरायुगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि। उपबर्बृहिवृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्वसुभगेपतिंमत् ॥

ऋ० मं० सू० १० मं० १

यह बहुत विस्तारसे ऋग्वेद में यमयमी का संवाद चलता है-यमी अपने भ्राता यम से अकस्मात् कह उठी कि हम दोनों पाणिग्रहण करें तो यमने उत्तर दिया कि हे सुभगे ! तू मेरे से अन्य पति की इ-

च्छा कर अभी ऐसा अधर्मका समय नहीं आया है इ-
त्यादि मन्त्रके सब पदों का अर्थ और व्याख्यान इस
वास्ते नहीं लिखा जाता कि इस जगह अधिक विस्तार
करना हमको अभीष्ट नहीं किन्तु सूक्ष्म रूपमें ही इस
संग्रह को मैं समाप्त करना चाहता हूं. इन विषयों पर
बहुत कुछ विस्तृत लेख विद्वानोंने लिख रक्खे हैं वहां
पर आप लोग देख सकते हैं। अन्यमिच्छस्व इत्यादि
सत्या० समु० ४ पृ० १३२ में मिलेगा ॥

तृतीय उपदेश—

सत्या० समु० ३ पृ० ४३ तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का
सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्ष पर्य्यन्त आयु को
बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ।

(विचार) मेरा दयानन्दी उपदेशकों और अन्य
साधारण सभ्यों से वार्त्तालाप बहुत कुछ हुआ है मैंने
कई एक दफे उन्हों से पूछा है कि आप लोग आयु का
कितना प्रमाण मानते हैं तो उन्हों ने जवाब यही
दिया है कि आयु सौ वर्षसे अधिक किसी युगमें नहीं
हो सकती और प्रमाण भी देदेते हैं कि "जीवेमश
रदः शतम्" पर उनको यह खबर ही नहीं कि हमारे
आचार्य हमारे ही मान्यग्रन्थ में हम लोगों को भी

चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु बढ़ानेका यत्न बतला गये हैं लेकिन इस लेखको देखकर समाजी सोचेंगे कि दूसरों के लिये चार सौ वर्ष की आयु बढ़ाने का यत्न स्वामी जी ब्रह्मचर्य से कह गये पर स्वामी जी ने भी तो जितेन्द्रिय रहकर विद्या पढ़ी और संन्यासी हो कर भी जितेन्द्रिय रहे उन से अधिक हम चेले लोग क्या जितेन्द्रिय रह सकते हैं. जब कि स्वामी जी साधारण मनुष्य की जो सौ वर्षकी आयु है उस को भी न पाकर इस लोक से विदा हुए तो हम लोग क्या पूर्ण आयु पासकते हैं। स्वामी जी के जितेन्द्रिय पन और ब्रह्मचर्य में भी अब उन लोगों को सन्देह होगा कि स्वामी जी कथनमात्र के यती थे नहीं तो क्या पूर्ण सौ वर्ष की भी आयु न पाते,

बस इस सन्देह में पड़कर गुरुकुल में तालीम पाने वालों को भी संशय होगा कि इस आश्रम के जड़ जमाने वाले और इस पठन पाठन के क्रम को बांधने वाले आचार्य ही आयु के अधबीच मर गये तो हम को पूर्ण आयु की आशा करना दुराशा है इस के लिखने से मेरा यह प्रयोजन है कि जो अभी तक समाजी भाइयों को भ्रम था कि आयु सौ वर्षसे अधिक किसी युग में भी नहीं हो सकती इस भ्रम को छोड़ दें, और

हमारे भागवत आदि पूज्यग्रन्थोंमें जो महात्मा ऋषियों के हजार २ वर्ष के तप लिखे हैं उन पर और षष्टिवर्षसहस्राणि रामोराज्यमचीकरत् „ इत्यादि वचनों पर शंका न करें तप और ब्रह्मचर्य आदि साधनों से आयु बढ सकती है यह बात स्वामी जी के लेख से ही पाई जाती है और मनु जी जी ने भी कृत युग में ४०० सौ त्रेतायुग में ३०० सौ द्वापर में २०० सौ और कलि में १०० सौ वर्ष की साधारण आयु लिखी हैं उस में तप के प्रभाव से न्यूनाधिक्य हो सकता है स्वामी दयानन्द जी का कथन है कि चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु बढ़ाओ। मेरा इस लेख से यह प्रयोजन नहीं है कि चार सौ वर्ष की आयु का होना स्वामी जी ने असंगत लिखा है किन्तु मैं आर्यसमाजियोंको इस हठ से हटाना चाहता हूं कि वे कहते हैं कि आयु सब युगों में १०० वर्ष की ही होती है-

मैं आशा करता हूं कि अब वे लोग इस भ्रम को दूर कर देंगे स्वामी अध बीच मरे पर कुछ चेले ही साधन करके दिखलावें ॥

चतुर्थ उपदेश—

सत्या० समु० ३ पृ० ६९ पं० १७। चारों वेदोंका स्वर

शब्द अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना योग्य। है विचार। मुझे बहुत से वैदिकाभास उपदेशक और पण्डित मिले हैं मैं ने उनसे वेदोंके उच्चारण की प्रक्रिया पूछी तो सिवाय चुप्प के कुछ भी उत्तर नहीं स्वर सहित उच्चारण करने वाला या ठीक वैदिक शब्दों के जानने वाला कोई मिला ही नहीं पूछा भी गया तो यज्ञेन यज्ञ की जगह जग्येन जग्य इत्यादि शब्द सुनने में आते हैं अर्थ जितना समझते हैं वह इन के ग्रन्थों से ही विदित होता है स्वामी जी लिखते हैं कि क्रिया सहित वेदों को पढ़ना योग्य है वह क्रिया कौन सी ये लोग सीखते हैं उस का कुछ पता नहीं जो पठन पाठन के आदि में हस्तौ पादौ प्रक्षाल्य आचम्य प्राणानायम्य इत्यादि जो मनुजी की आज्ञा है वह इन के पास बिलकुल है ही नहीं एक विधि इन के पास देखी जाती है जूता पहिन, खाट पर बैठे, या सड़क पर जहां अनेक जातियां आती जाती हैं गायत्री आदि मन्त्रों को चिल्ला २ के पढ़ रहे हैं जब कोई उन से कहे कि तुम यह क्या करते हो तब कह उठते हैं कि क्या यह गायत्री मन्त्र कोई सिंह है किसी को मैदान में खा डालेगा परन्तु वे यह नहीं जानते कि मन्त्र शब्द के माइने ही गुप्त रखने के हैं

"मन्त्र गुप्तभाषणे" धातुसे यह मन्त्रशब्द सिद्ध होताहै आप सोच सकते हैं कि मंत्रके माइने गुप्त रखनेके हैं या हर एक जगह बकने के, स्मृति और श्रुतियों में कहा भी है ॥

विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिष्टेस्मिरक्षमाम्।
असूयकायमांमादास्तथास्यां वीर्यवत्तमा॥

मनु अ० २ इसी प्रकार श्रुति भी है "विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम" इत्यादि विद्या ब्राह्मणके पास आकर बोली कि मैं तेरा खजाना हूं निन्दक कुटिल पामर नीच आदिकों से मुझे मत कह जिस से मैं वीर्य वाली (समर्थ होऊं) इत्यादि आज्ञाओं को वे क्यों समझने और मानने लगे। वे लोग हमारे मन्दिरों में जो मूर्त्ति द्वारा परमात्मा का ध्यान और उपासना की जाती है उसकी बहुत निन्दा किया करतेहैं, कहा करते हैं कि मूर्त्तिमें क्या चित्त स्थिर हो सकता है? अब उनके लिये स्वामीजी उपासना या चित्त स्थिर करनेके स्थान बतलाते हैं जिनको सुनकर ही बुद्धिमान् आश्चर्य करेंगे ॥

पञ्चम उपदेश।

सत्या० समु० ७ पृ० १९८ पं० ७। इन्द्रियोंको रोक

मनको नाभि प्रदेशमें वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा, पीठ के मध्य हाड़में किसी स्थानपर आत्मा और परमात्मा का विवेचन करे ॥ इति ॥

विचार—किसीने सत्य कहा है कि जैसी जाकी भावना वैसी वाकी बुद्धि, शान्ताकारम्—सशंखचक्रम् कस्तूरीतिलकम्—इत्यादि शुद्ध सात्विक ध्यानोंको छोड़ कर हाड़ पर दृष्टि दौड़ी है-इस शब्द के लिखने और बोलनेसे भी बुद्धिमानोंको ग्लानि होती है पर न जाने किस तरंगमें स्वामी जीने पीठ के हाड़में ध्यान लिख मारा दयानन्दी भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि वे इसका प्रमाण दें पीठके हाड़में ध्यान या परमात्माका विवेचन करना कौन से वेद या वेदानुकूल ग्रन्थ या योगशास्त्रमें लिखा है ॥

और किसी समाजी डाक्टर ने दुर्बीन द्वारा इस हाड़का अवलोकन करके साइंससे निश्चय किया हो कि इस में अन्य हाड़ों से क्या विशेषता है क्योंकि वे लोग सनातनियों की तरह विना सोचे विचारे कोई काम नहीं किया करते, आचमन तक का मतलब कफ की निवृत्ति बतलाते हैं जरूर इस से भी वे लोग कुछ समझे होंगे, हम इन बातों का उत्तर भी चाहते हैं ।

मूर्त्तिमें चित्तकी स्थिरता नहीं और हाड़में चित्त स्थिर करो और परमात्मा का विवेचन करो! वाहरे ध्यान लगाने वालो। और अक्लमन्दो। आपकी बुद्धिको धन्य है। हाड़ भी तो मूर्त्ति ही पदार्थ है फिर भी आप मूर्त्तिपूजासे नहीं वच सकते? हम शुद्ध मूर्त्तियोंमें ईश्वर का ध्यान करते हैं तुम उसी परमात्माको हाड़ोंमें खोजते फिरते हो। समाजी डाक्टरोंको उचित है कि मुर्दोंको चीरते फाड़ते भी पीठके हाड़ोंको ध्यानसे देखलिया करें जब ऐसे स्थानोंमें ध्यान लगावोगे तब तो प्यारे समाजियो! अवश्य वैदिकधर्म की उन्नति करोगे। वाहरे साइंस विद्याके जानने वालो।

षष्ठ उपदेश।

जब स्वामीजी निराकारकी स्तुति प्रार्थनाका प्रकार लिखचुके तब मन्दिरों में परिक्रमा करते लोगोंको देखकर सोचा होगा कि निराकारकी परिक्रमा किस प्रकार हो सकती है झूठे सच्चे प्रकार लोगोंके वहकाने के लिये सभी वतलाने चाहिये—

सत्या० समु० ३ पृ० ३७ पं० में आप लिखते हैं कि-मनसा परिक्रमणं"-पञ्चमहायज्ञविधि में भी लिखा है कि "अथ मनसापरिक्रमामन्त्राः। अर्थात् उस सर्वव्यापक ईश्वर के आस पास चौगिरदे मनको फेर ले

महाशय ! अनन्त और सर्वव्यापक वह आप का ईश्वर है तो मन उस के चौगिरदे कैसे फिर सकता है ? जिस को-"अवाङ्मनसगोचरम्" ऐसा वेद और पुराण प्रतिपादन कर रहे हैं-यदि आप ईश्वरकी परिक्रमा करना चाहते हैं तो कुछ देर के लिये मूर्तियों पर विश्वास ले आइये क्या मूर्त्तिपूजा माने विना आप ईश्वरका ध्यान स्तुति-धूप दीप और परिक्रमा आदि कर सकते हैं ? कदापि नहीं। फिर आगे चलकर सत्या० समु० ११ पृ० ३३३ में "यन्मनसा न मनुते" इसके भावार्थ में लिखा है कि जो मन से इयत्ता करके मन को नहीं आता जो मन को जानता है इत्यादि पहिले मन से परिक्रमण लिख कर फिर आप ही मन से बाहर बतला दिया यह साफ परस्पर विरोध है या और कुछ ? बार २ दयानन्दी इस बात को कहा करते हैं कि भागवत आदि पुराणों में परस्पर विरोध दीखता है परन्तु आप के इस पञ्चमवेद में ऐसा परस्पर विरोध और मनगढ़न्त लीला क्यों ?

सप्तम उपदेश ।

सत्या० पृ० ७५ में "यथेमांवाचम्" इत्यादि मन्त्रसे

आपने मनुष्यमात्र अर्थात् नीचोंको भी वेद पढ़ने का अधिकार बतलाया है वहां पर आपने लिखा है कि एक के लिये विधि और एकके लिये निषेध तो क्या ईश्वर पक्षपाती है सब मनुष्यमात्र को उसने पैदा किया तो सभी को वेदका अधिकार क्यों नहीं ? इत्यादि *

यह तो वही दृष्टान्त हुआ कि सभी अन्न बारहपसेरी खल और खांड़ एक भाव। इस तरहसे ईश्वर पक्षपाती नहीं हो सकता जैसे किसीके चार पुत्र हैं कोई कचहरी में जाने वाला है एक वकालत करता है एक घर के काम में रहने वाला और एक दिनभर नादान लड़कों में खेलता है उनके पिता ने चार प्रकारके वस्त्र मंगाये उसने जैसा अधिकारी देखा वैसे ही वस्त्र से उन की इच्छा पूरी को तो वह पक्षपाती नहीं कहलाता ऐसे ही ईश्वरने भी चारों वर्णों के कर्म यथाधिकार सौंप दिये हैं ब्राह्मण को जो फल गायत्री मन्त्रसे होता है वही शूद्रको द्वादशाक्षर मन्त्रसे हो सकता है तो फिर पक्षपात कैसा ? पक्षपाती वह होता है जो

* यदि ऐसा मानोगे तो पशुओं को भी वेद क्यों नहीं पढ़ाते ?॥

फल में भेद रक्खे जब कि भिन्न २ प्रकार के एकही फल परमात्मा सब को देता है तो पक्षपाती नहीं हो स-कता। यदि इसी प्रकार पक्षपात होता है तो आपने सत्या० पृ० १३७ में संन्यास का केवल ब्राह्मण ही को अधिकार क्यों बतलाया शूद्रादिकोंको भी क्यों नहीं,

सत्यार्थ० पृ० १३७ पं० ४ प्रश्न—सन्यास ग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है वा क्षत्रियादि का भी?—उत्तर ब्राह्मण ही का अधिकार है यहां पर स्वामी जी को ब्राह्मण में क्या अधिकता दिखलाई दी? यदि कुछ अधिकता है और संन्यास का अधिकार ब्राह्मणको ही है तो फिर वेद के अधिकारी भी ये ही हो सकते हैं शूद्र और अतिशूद्र के लिये वेदका अधिकार बत-लाना यह आप की साफ भूल है।

अष्टम उपदेश—

सत्या० समु० ७ पृ० २०२—पं० ११ और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता है ॥

विचार। ईश्वरीय कार्यमें भी बाबाजी अपनी युक्ति ल-ड़ाते ही रहते हैं मानो सभी ईश्वरके कार्यभी आप युक्ति से समझे बैठे हैं क्यों? युक्तिबाजजी! अगाड़ी चलकर सत्यार्थ० पृ० २१४। पं० ८ में आप ने लिखा है- प्रश्न

अब निराकार है तो वेद विद्याका उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे हो सकता होगा ? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये उत्तर-परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेद विद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है। यहां पर आपने ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानकर विना मुखके वर्णोच्चारण और अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है यह युक्तिविरुद्ध वार्त्ता आपने कैसे स्वीकार की ? आप यही कह सकते हैं कि ईश्वर के विषयमें यह सब कुछ हो सकता है क्योंकि "कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुं समर्थ ईश्वरः„ वह सर्वशक्तिमान् है अपनी अलौकिक शक्तिसे विना मुखके वेदोच्चारण ही क्या जो चाहे सो अलौकिक कार्य कर सकता है यदि ऐसा मानते हो तो अलौकिक शक्तिसे ईश्वरका जन्म और अवतार भी हो सकता है वहां पर शंका करना आपका व्यर्थ है। क्योंकि युक्तिसे देखाजाय तो विना मुखके वर्णोच्चारण भी असम्भव ही नहीं किन्तु असाध्य है, यदि

कहो कि ईश्वर अपनी शक्तिसे कर सकता है तो गर्भ से प्रकट होना भी इस सर्वशक्तिमान् ईश्वर का ही मानते हैं आप जैसे साधारण जीवोंका नहीं, क्या ऐसे ईश्वर को अपनी शक्ति से गर्भ मे प्रकट होकर अवतारादि रूप से दिखाई देना मुशकिल है ! आपने कभी यजुर्वेद को देखा है या नहीं यदि देखा है तो फिर परमात्मा के गर्भमें आनेकी शंका क्यों ? देखिये यजुर्वेद अ० ३० मं० १—

प्रजापतिश्चरतिगर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधाविजायते। तस्ययोनिम्परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्हतस्थुर्भुवनानिविश्वा ॥

(प्रजापति) परमात्मा गर्भके मध्यमें विचरता है उत्पन्न होने की जब इच्छा करता है तो जन्मको नहीं धारण करता हुआ भी अनेक प्रकार से प्रकट होता है उस के जन्म को धीर (ज्ञानी पुरुष) पश्यन्ति देखते हैं उसी में सब भुवन स्थित हैं । इति ॥

दयानन्दियों के सामने जब मृतकश्राद्ध के द्योतक "आयन्तुनःपितरः,, यजु० अ० ८ "येजीवायेचमृताः,, "येनिखाता,, अथर्व० कां० १८ इत्यादि मन्त्र पेश किये

जाते हैं तब कहा करते हैं कि मरोंको अन्न पहुंचना और मरोंका यज्ञ में आना युक्ति से विरुद्ध है और समझ से बाहर है मानो सबही शास्त्रीय कार्य आप समझ सोच कर सकते हैं। यदि समझकर करते हो तो हमारे आप से निम्न लिखित प्रश्न हैं। संस्कारविधि०। दक्षिण में मुख करके अपसव्य होकर "ओंपितरःशुन्धध्वम्" इस मन्त्र से जल छोड़दे ? "ओंवनस्पतिभ्योनमः इस मन्त्र से उखल मूसल के पास अन्न रखना ? तीन कुशा लेकर " ओषधे! त्रायस्वैनम्मैनशं हिंसीः" इस मन्त्रको पढ़ कर छुरे की ओर देखे ? मन्त्र पढता जाय और गर्भवती स्त्री के पेट पर हाथ फेरता जाय ?। मुर्दे के पेर दक्षिण की ओर करना ?। श्मशान में घृत डालना और "स्वर्गायलोकायस्वाहा" इत्यादि मन्त्र पढना ? सोनेकी शलाका से दशदिनके बालक की जिह्वा पर ओं लिखना और कानमें कहना कि वेदोसि तेरा नाम वेद है ?=हम आप से इन सब बातों का उत्तर भी चाहते हैं कि आप उक्त बातें क्या सोच समझ कर करते हैं। यदि बिनाही समझे करते हो तो वेदोक्त मन्त्ररूप शब्द प्रमाण होने पर

भी मृतक पितरों को अन्न पहुंचने में शंका क्यों? और यह कहना भी आप का व्यर्थ है कि पौराणिक लोग विना सोचे समझे कर्मोंको करते हैं, हम लोग अपनी अक्ल से काम लेते हैं ॥

इन सब बातों से यह माना गया कि जिन बातों को वेद या अन्य शास्त्र कह रहे हैं वे मनुष्य की समझ में न आने पर भी मान लेनी उचित हैं। मनुष्य की युक्ति और अक्ल मनुष्य के कार्य और लौकिक पदार्थों में ही काम दे सकती है. ईश्वरीय कार्य और अलौकिक कार्यों को युक्ति और अक्ल दौड़ाकर समझने का इरादा करना मानो आकाश में उछलकर सूर्य और चन्द्रमा के पकड़ने का इरादा है॥ इति॥

नोट—साइंस की रोशनी में चलने वालो ! यह तो गरुड़पुराण की तरह पोपलीला मालूम होती है। वैदिक रोशनी में चलने वालों के आगे यह क्या अन्धेर!

इस थोड़े ही लेख से बुद्धिमान् समझ सकते हैं कि जो लोग वेद की रोशनी में चलते हैं और कहते हैं कि जो कुछ समझते हैं सो हमही समझते हैं उन के ग्रन्थ और वे आप कहां तक सत्य हैं ।

शमिति । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः